वीर संवत् २५०२, ज्येष्ठ कृष्ण ०२, सोमवार
दिनांक-१४-०६-१९७६, गाथा-७ से ९, प्रवचन-८

परमात्मप्रकाश चलता है। योगीन्द्रदेव कृत अध्यात्मशास्त्र परमात्मप्रकाश है। उसमें पंच परमेष्ठी का अधिकार चलता है। अरिहन्त और सिद्ध का अधिकार आ गया। आचार्य, उपाध्याय, साधु का अधिकार चलता है। उसमें भी आचार्य तक आ गया है।

आचार्य कैसे होते हैं? कि अपना आनन्द, ज्ञानस्वरूप भगवान का वे आचरण करते हैं। यहाँ विकल्प और राग की बात नहीं ली। शुद्ध चैतन्यवस्तु जो आनन्दकन्द प्रभु है, उसका आचरण करते हैं, उसे आचार्य कहा जाता है। समझ में आया? यहाँ तक अपने आया है।

अब उपाध्याय कैसे होते हैं? उपाध्याय। पंचास्तिकाय का उपदेश उपाध्याय करते हैं। षट् द्रव्य का उपदेश करते हैं, सप्त तत्त्व का उपदेश करते हैं, नौ पदार्थ का। है? **उनमें निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** उपादेय है, ऐसा कहते हैं। पंचास्तिकाय तत्त्व है। काल के अतिरिक्त पाँच अस्तिकाय हैं। उसमें शुद्ध जीवास्तिकाय, वही आदरणीय है, ऐसा उपदेश उपाध्याय करते हैं। आहाहा! समझ में आया? भगवान अरिहन्त, वे भी जीवास्तिकाय में आ गये। परन्तु वे आदरणीय हैं, ऐसा यहाँ नहीं कहा। **निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** है? देखो! **निज शुद्ध जीवास्तिकाय,...** सूक्ष्म बात है।

मुमुक्षु : अरिहन्त प्रभु हमारे ही तो हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : अरिहन्त प्रभु परद्रव्य है।

यहाँ कहा न, पंचास्तिकाय में अरिहन्त, सिद्ध आ गये। परन्तु उनमें आदरणीय—उपादेय कौन? कि निज शुद्धात्मा। समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई! भगवान सर्वज्ञ परमेश्वर ने अन्दर जो पवित्र आत्मा को देखा, निज सत्ता से शुद्ध चैतन्य ऐसा निज जीवास्तिकाय, वह उपादेय है। ज्ञान की वर्तमान पर्याय में निज शुद्धात्मा आदरणीय है। अथवा ग्रहण करनेयोग्य है। समझ में आया? आहाहा!

मुमुक्षु : यह उपादेय है, इसका अर्थ क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : कहा न, ग्रहण करनेयोग्य। अन्दर है। ग्रहण करना। निज शुद्ध चैतन्यमूर्ति है उसे पर्याय में ग्रहण करना। उसका आदर करके, उसमें लीन होना। आहाहा!

मुमुक्षु : ग्रहण करना अर्थात् पकड़ना?

पूज्य गुरुदेवश्री : पकड़ना। ज्ञायक त्रिकाल है, उसे ज्ञान से पकड़ना।

मुमुक्षु : हाथ से पकड़ना?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाथ कहाँ आत्मा है? वह तो मिट्टी-जड़ है। आहाहा!

वस्तु पंच अस्तिकाय है। काल अस्तिकाय नहीं। काल अस्ति है। काय नहीं। क्योंकि असंख्य हैं, भिन्न-भिन्न कालाणु हैं। तो कालाणु के अतिरिक्त पाँच अस्तिकाय हैं, उनमें निज शुद्ध जीवास्तिकाय, निज शुद्ध जीवास्तिकाय... आहाहा! शुद्ध निज। परमात्मा पंच परमेष्ठी जीवास्तिकाय में आते हैं, तथापि आदरणीय और ग्रहण करनेयोग्य (नहीं)। ज्ञान की पर्याय में आदरणीय हो तो वह निज शुद्धात्मा है। आहाहा! समझ में आया? है न? नीचे उपादेय का अर्थ यह किया है। **ग्रहण करनेयोग्य....** आहाहा! सूक्ष्म बात, भाई! उपाध्याय **ऐसा उपदेश करते हैं,...** ऐसा उपदेश नहीं करते कि राग से तुझे कल्याण होगा, व्यवहाररत्नत्रय साधते-साधते निश्चय साधन होगा। ऐसा उपदेश उपाध्याय नहीं करते। समझ में आया?

जैनशासन में यथार्थ उपाध्याय उसे कहा जाता है कि जो इन पंचास्तिकाय में एक निज शुद्ध जीवास्तिकाय। असंख्य प्रदेशी है न? और अनन्त गुण सम्पन्न प्रभु आत्मा तो है। तो ऐसा शुद्ध जीवास्तिकाय ही आदरणीय है। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई आदरणीय नहीं है। ऐसा उपदेश उपाध्याय करते हैं। आहाहा! कुछ खबर नहीं होती, क्या चीज़ है?

मुमुक्षु : उपाध्याय स्वयं आदरणीय नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह उपाध्यायपना अपनी पर्याय है, वह भले साधक है, परन्तु आदरणीय तो उसे निज आत्मा ही है। समाधि उपादेय है, ऐसा कहेंगे। जो समाधि वीतराग पर्याय द्वारा निज द्रव्य को आदरणीय ग्रहण किया, वह तो आदरणीय है ही,

परन्तु निर्विकल्प समाधि जो मोक्षमार्ग है, उसे भी आदरणीय कहा जाता है। आहाहा! सूक्ष्म बातें ऐसी हैं, भाई! एक बात (हुई)।

षट्द्रव्य। भगवान ने छह द्रव्य देखे हैं। तो उपाध्याय छह द्रव्य का उपदेश करते हैं। परन्तु छह द्रव्य में निज शुद्ध जीवद्रव्य उपादेय है, ऐसा उपदेश करते हैं। आहाहा! अपना निज शुद्ध चैतन्य भगवान पूर्ण आनन्दमूर्ति प्रभु, वही ग्रहण करनेयोग्य है, ऐसा उपदेश उपाध्याय करते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसा उपदेश करे कि तुम राग करो, भक्ति करो, पूजा करो, उससे तुम्हारा कल्याण होगा, यह उपदेश उपाध्याय का है ही नहीं। जैन के उपाध्याय का यह उपदेश ही नहीं। समझ में आया? देश की सेवा करो, तुम्हारा कल्याण होगा, यह उपदेश जैन का उपदेश नहीं। जैन के उपाध्याय का उपदेश नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : सबको अच्छा लगे, ऐसा उपदेश देना चाहिए न?

पूज्य गुरुदेवश्री : सबको भले न अच्छा लगे। आहाहा!

बुखार में कड़वी दवा पीते हैं। तो मीठी दवा देना? शक्कर देगा तो मर जायेगा। वास्तविक ऐसी चीज़ है। एक समय में निज शुद्ध प्रभु परमानन्द मूर्ति, वही षट्द्रव्य में आदरणीय है। और अन्तर वीतराग समाधि से वही आदरणीय और ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! फिर कहेंगे कि वीतराग समाधि भी आदरणीय है। वीतराग समाधि है न, वह भी.... वीतरागी निर्मल पर्याय है न? उसे भी आदरणीय कहते हैं।

निज शुद्ध जीवद्रव्य,... देखो न! आहाहा! **निज शुद्ध जीवतत्त्व,...** सात तत्त्व हैं न? सात तत्त्व। जीव, अजीव, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष—यह सात। तो सात में निज शुद्ध जीवतत्त्व उपादेय है। संवर, निर्जरा और मोक्ष भी उपादेय नहीं। पहली दृष्टि यह है। आहाहा! समझ में आया? सात तत्त्व में आस्रव में पुण्य-पाप इकट्ठे लिये हैं। नौ पदार्थ में अलग किये हैं। तो सात तत्त्व जो जीव है, अजीव है, आस्रव है, बन्ध है, संवर है, निर्जरा है और मोक्ष है। सात में निज शुद्ध जीवतत्त्व, वह आदरणीय है। पर्याय में। आदरणीय तो पर्याय में है न? आहाहा! समझ में आया? यह थोड़ी हिन्दी भाषा है। समझना। आहाहा!

अरे! वीतराग दिगम्बर सन्त, जिन्होंने अपने स्वरूप का आराधन किया और वही बात जगत को कहते हैं। समझ में आया? ऐसी बात अन्यत्र कहीं नहीं है। दिगम्बर सम्प्रदाय में भी कहते हैं कि हम उपाध्याय उसे कहते हैं... आहाहा! कि जो सात तत्त्व की बात में निज शुद्ध जीवतत्त्व को आदरणीय बतावे। यह उपाध्याय। कहो, पण्डितजी! भगवान निज शुद्ध वस्तु पवित्र पिण्ड प्रभु आत्मा, वही पर्याय में ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! फिर कहेंगे कि वीतराग पर्याय साधती है, उसे भी उपादेय कहा जाता है। समझ में आया?

निज शुद्ध जीवपदार्थ,... नौ पदार्थ में... नौ पदार्थ समझते हो? जीव, अजीव, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, निर्जरा, बन्ध और मोक्ष। यह नौ पदार्थ है। पहले सात तत्त्व कहे। उनमें आस्रव में पुण्य-पाप इकट्ठे लिये। यहाँ अलग किये। तो नौ पदार्थ में... आहाहा! एक शुद्ध जीव पदार्थ, निज शुद्ध जीव पदार्थ आदरणीय है। संस्कृत है। समझ में आया? त्रिकाली जीव शुद्ध चैतन्यघन भगवान, वह नौ पदार्थ में निज शुद्ध आत्मा वीतरागी पर्याय में ग्रहण करनेयोग्य है, वीतरागी पर्याय में आदर करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? वास्तविक तत्त्व की खबर न मिले और ऊपर से चल निकले कि धर्म करते हैं। धर्म कहाँ है?

यहाँ तो नौ पदार्थ में संवर, निर्जरा, मोक्ष आये। तथापि परमार्थ से तो निज शुद्ध आत्मपदार्थ ही आदरणीय है। आहाहा! समझ में आया? लो! निज शुद्ध पदार्थ है न? **जो आप शुद्धात्मा है, वही उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) है,...** वस्तु है एक समय में पूर्ण शुद्ध जीवतत्त्व, तो वीतरागी पर्याय में वही ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! फिर कहेंगे कि वीतरागी पर्याय साधक है, उसे भी उपादेय कहा जाता है। साधक है न? समझ में आया? व्यवहार का विकल्प उपादेय है और साधनेवाला है, ऐसा नहीं है। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का जो विकल्प है, वह साधक भी नहीं और आदरणीय भी नहीं। आहाहा! समझ में आया?

अन्य सब त्यागने योग्य हैं,... भाषा देखो! क्या कहा? पंचास्तिकाय में निज शुद्ध आत्मा ग्रहण करनेयोग्य है। इसके अतिरिक्त सब त्यागनेयोग्य है। अरिहन्त, सिद्ध आदि भी आत्मा को त्यागनेयोग्य है। पण्डितजी! पंच परमेष्ठी त्यागनेयोग्य है, ऐसा कहा।

मुमुक्षु : स्पष्टीकरण करो, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : परवस्तु है न? परवस्तु है तो अन्तर में त्यागनेयोग्य है। एक निज शुद्ध आत्मा ही आदरणीय है। ऐसी बात है। है न?

अन्य सब त्यागने योग्य हैं,... अर्थात् पंचास्तिकाय में निज शुद्ध जीवास्तिकाय आदरणीय है, इसके अतिरिक्त सर्व त्यागनेयोग्य है। षट्द्रव्य में निज शुद्ध द्रव्य आदरणीय है, इसके अतिरिक्त सर्व त्यागनेयोग्य है। पंच परमेष्ठी भी लक्ष्य करनेयोग्य है नहीं। आहाहा! क्योंकि पंच परमेष्ठी पर लक्ष्य जायेगा तो विकल्प होगा, राग होगा। आहाहा! ऐसी बात है, भाई!

मुमुक्षु : ७०० मील दूर से यहाँ आये हों तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : दूर से आये तो क्या हुआ? आये तो आत्मा में आत्मा है। समझ में आया? आहाहा!

सात तत्त्व में भी एक जीवतत्त्व ही उपादेय है। इसमें पंचास्तिकाय और षट् द्रव्य में तो दूसरे द्रव्य त्याग है। सात तत्त्व में निज शुद्ध चैतन्यतत्त्व ज्ञायकभाव, वह उपादेय है। इसके अतिरिक्त संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि त्यागनेयोग्य हैं। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बाते हैं। ऐसा उपाध्याय का उपदेश वीतराग जैनशासन में इस प्रकार चलता है। उससे विरुद्ध हो, वह जैनशासन के उपाध्याय नहीं हैं। समझ में आया? आहाहा! व्यवहार है अवश्य, आता है, परन्तु आदरणीय है, ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

इसी प्रकार नौ (पदार्थ) में निज शुद्ध पदार्थ नौ में। नौ पदार्थ हैं, उनमें निज शुद्ध भगवान पदार्थ ज्ञायकभाव, वही ग्रहण करनेयोग्य है। पंचास्तिकाय में और जीव द्रव्य में परद्रव्य त्यागनेयोग्य है, ऐसा आया। पंच परमेष्ठी भी त्यागनेयोग्य आ गया। आहाहा! वाणी भी त्यागनेयोग्य है, ऐसा आ गया। पंच परमेष्ठी की वाणी जो है, भगवान की दिव्यध्वनि है, यह पंचास्तिकाय में है, पुद्गलास्तिकाय में, परन्तु त्यागनेयोग्य है। आहाहा! सूक्ष्म बातें, बापू! जैनदर्शन की मूल वस्तु, वह भी दिगम्बर जैनदर्शन, इसके अतिरिक्त अन्यत्र कहीं दर्शन है ही नहीं। आहाहा!

भगवान आत्मा, कहते हैं कि जीवद्रव्य में निज शुद्ध द्रव्य, षट् द्रव्य में। उसमें तो

दूसरे अरिहन्त आदि द्रव्य भी निकाल दिये। **अन्य सब त्यागने योग्य हैं,...** ऐसा कहा है न? अस्ति-नास्ति की। और निज शुद्ध जीवतत्त्व। सात तत्त्व में निज शुद्ध जीवतत्त्व अन्दर पर्याय में आदरणीय है। आहाहा! और सब संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि त्यागनेयोग्य है। समझ में आया? आहा! फिर नौ पदार्थ में जीव निज पदार्थ ही आदरणीय है। आहाहा! **आप शुद्धात्मा है, वही उपादेय (ग्रहण करनेयोग्य) है,...** आहाहा! दृष्टि का विषय ध्रुव, वही ग्रहण करनेयोग्य है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, बापू! यह तो वीतराग मार्ग है। सर्वज्ञ परमेश्वर कुन्दकुन्दाचार्य दो हजार वर्ष पहले महाविदेह में भगवान के पास गये थे। वहाँ से आकर यह शास्त्र बनाया। इस परमात्मप्रकाश में भी समयसार आदि कुन्दकुन्दाचार्य की झलक है। प्रस्तावना में लिखा है। प्रस्तावना में है। आहाहा! समाधिशतक आदि की इसमें झलक है।

अन्य सब त्यागने योग्य हैं,... आहाहा! उपादेय और त्यागनेयोग्य, दो बातें लीं। समझ में आया? जिसकी अभी खबर भी न हो कि यह निज क्या है और पर क्या है... आहाहा! **ऐसा उपदेश करते हैं,...** है? उपाध्याय, जैन के सच्चे उपाध्याय ऐसा उपदेश करते हैं। पंचास्तिकाय में निज शुद्ध जीवास्तिकाय आदरणीय है, ऐसा उपदेश करते हैं। और स्वयं भी ऐसा आचरण करते हैं। आहाहा!

तथा शुद्धात्मस्वभाव का सम्यक्श्रद्धान-ज्ञान-आचरणरूप अभेद रत्नत्रय है, वही निश्चयमोक्षमार्ग है, ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं.... जैन के सच्चे उपाध्याय उन्हें कहते हैं कि शुद्ध आत्मस्वभाव भगवान की श्रद्धा। शुद्ध जीवास्तिकाय भगवान आत्मा की अन्दर श्रद्धा, स्वरूप सन्मुख होकर निर्विकल्प श्रद्धा, शुद्ध आत्मा का सम्यग्ज्ञान। आहाहा! शास्त्रज्ञान और पर नहीं। यहाँ तो शुद्धात्मा का ज्ञान और शुद्धात्मस्वभाव का आचरण, वह शुद्ध भगवान पवित्र मूर्ति प्रभु, उसमें रमना, वह आचरण और वह चारित्र है। **अभेद रत्नत्रय है,...** देखो! इन तीन को अभेद रत्नत्रय कहते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, शास्त्र का ज्ञान और पंच महाव्रत आदि के परिणाम, यह भेदरत्नत्रय विकल्प है। वह आदरणीय नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

अभेद रत्नत्रय है, वही निश्चयमोक्षमार्ग है,... देखो! वही सच्चा मोक्षमार्ग है।

शुद्ध जीवास्तिकाय प्रभु, पूर्ण आनन्द का नाथ परमात्मस्वरूप की श्रद्धा, स्वसन्मुख होकर उसकी प्रतीति, स्वसन्मुख होकर उसका स्वसंवेदन ज्ञान और शुद्धात्मा की अन्दर रमणता—आचरण, वही निश्चयमोक्षमार्ग है। **ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं,...** उपाध्याय शिष्यों को यह उपदेश देते हैं।

मुमुक्षु : व्यवहार करने का उपदेश नहीं देते।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार करने का उपदेश वे नहीं देते। जानने का कहते हैं। आहाहा! व्यवहार बीच में आता है, हों! परन्तु वह जाननेयोग्य है। आदरनेयोग्य नहीं। ऐसी बात है। आहाहा! इस वस्तु की श्रद्धा की खबर न हो। सम्यग्दर्शन कैसे हो और सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है? समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि भगवान आत्मा..! उपाध्याय शिष्यों को ऐसा उपदेश करते हैं कि शुद्ध आत्मा परमानन्द की मूर्ति नित्यानन्द प्रभु की श्रद्धा-ज्ञान और रमणता, वह निश्चयरत्नत्रय, अभेदरत्नत्रय करनेयोग्य है, ऐसा उपदेश शिष्यों को देते हैं। **ऐसे उपाध्यायों को मैं नमस्कार करता हूँ।** 'योगीन्द्र' टीकाकार कहते हैं। ऐसे उपाध्याय... आहाहा! वे वन्दनीय है। मिथ्या उपदेश करे और उपाध्याय नाम धरावे, वे वन्दनीय नहीं। आहाहा!

मुमुक्षु : उपाध्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु उपाध्याय हों, वे न? सच्चे उपाध्याय तो ऐसे ही होते हैं। वैसे तो उपाध्याय नाम बहुत धराते हैं। और यह करो, यह करो, पुण्य करो और इससे तुम्हें कल्याण होगा, ऐसा उपदेश वह जैन उपदेश ही नहीं है। वह वीतरागमार्ग का उपदेश ही नहीं है।

मुमुक्षु : देश सेवा तो करनी चाहिए।

पूज्य गुरुदेवश्री : देश सेवा कर कौन सकता है तीन काल में? देश, वह परचीज़ है। उसकी सेवा कर सकता है? आत्मा पर जीव को जिला सकता है? पर की प्राण रक्षा आत्मा कर सकता है? पर के प्राण की रक्षा तो उससे होती है। दूसरा कर सकता है? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

जैन परमेश्वर का तत्त्व, मूल तत्त्व ऐसा गम्भीर और गूढ़ है कि उसे समझने के लिये बहुत प्रयत्न चाहिए। ऐसा का ऐसा ऊपर-ऊपर से मिल जाये, ऐसी वह चीज़ नहीं है। आहाहा! कितनी बात की, देखा! आहाहा! यह उपाध्याय की बात की। अब साधु कैसे होते है? णमो लोए सव्व साहूणं। वे जैन के साधु। दूसरे में तो होते ही नहीं।

मुमुक्षु : णमो लोए सव्व साधु।

पूज्य गुरुदेवश्री : वे सव्व साधु जैन के। यह वह सुशीलकुमार एक स्थानकवासी है। देखो! उसमें णमो लोए सव्व साहूणं कहा है। सर्व साधु कहा। परन्तु जैन के साधु, वे साधु हों। अन्य में तो तीन काल में साधु होते ही नहीं। आहाहा!

अब कहते हैं, **शुद्धज्ञान स्वभाव शुद्धात्मतत्त्व...** एक अर्थ रह गया है। अन्दर एक अर्थ रह गया है। शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव, संस्कृत में ऐसा है। शुद्ध ज्ञान एक स्वभाव, ऐसा चाहिए। है? सुधारा है? संस्कृत में है। यह तो है। शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव। ऐसा। बुद्ध अर्थात् ज्ञान। शुद्ध भगवान आत्मा और बुद्ध अर्थात् ज्ञानस्वरूप पवित्र, वह एक स्वभावी वस्तु जो भगवान आत्मा की, ऐसे **शुद्धात्मतत्त्व की आराधना...** यह आराधना, वह निर्मल पर्याय है। आराधना किसकी? शुद्धात्मतत्त्व की। आहाहा! नित्यानन्द प्रभु ध्रुव की आराधना। आहाहा! समझ में आया?

वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो साधते हैं,... भाषा देखो! पहले उपादेय करते थे और अब कहते हैं, निर्विकल्प समाधि को साधते हैं। शुद्ध बुद्ध एक स्वभाव ऐसा शुद्धात्मा भगवान, उसकी आराधनारूप उसकी सेवा, स्वसन्मुख की श्रद्धा-ज्ञान और चारित्र की आराधना, **आराधनारूप वीतराग निर्विकल्प समाधि...** यह वीतरागी नीचे लिखा है। वह एकड़ा है न? '**समाधि को...** आचरते हैं। यह तो आचार्य-साधु की (बात), अरिहन्त-सिद्ध की बात इसमें नहीं है। अरिहन्त सिद्ध तो पूर्ण हो गये, उन्हें क्या? अभी अरिहन्त के लिये ऐसा कहा जाता है कि उन्हें चार कर्म हैं तो ध्यानाग्नि में उन्हें जलाते हैं, भस्म करते हैं, ऐसा व्यवहार से कहा जाता है। यह पहले आ गया न?

मुमुक्षु : भूतनैगमनय से?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं वर्तमान में। चार कर्म वर्तमान है न? अघाति। तो

उन्हें ध्यानाग्नि में जलाते हैं। यह पहले आ गया। कर्मकलंक का नाश। चार बाकी है न? क्षण-क्षण में नाश पाते हैं। सिद्ध को तो कुछ है नहीं।

यहाँ कहते हैं कि वीतराग निर्विकल्प समाधि, वह वीतरागी निश्चयमोक्षमार्ग। आहाहा! समाधि अर्थात् आनन्द की धारा का परिणमन। आहाहा!

मुमुक्षु : समाधि अर्थात् आनन्द की धारा का परिणमन? समाधि तो शरीर को सब छोड़ देने का नाम (समाधि नहीं)?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्या छोड़े? अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ प्रभु, उसकी आराधना में अतीन्द्रिय आनन्द दशा प्रगट होती है। आहाहा! इसलिए तो ऐसा कहा कि वीतरागी निर्विकल्प समाधि, ऐसा कहा। राग बिना की, भेद बिना की आनन्द की समाधि आत्मा की। आहाहा! मार्ग सूक्ष्म, बापू! लोग बाहर में मानकर बैठे हैं, अनादि की भ्रमणा। आहाहा! **वीतराग निर्विकल्प समाधि को जो आचरते हैं, कहते हैं, वीतराग समाधि को कहे और साधते हैं, वे ही साधु हैं।** उन्हें साधु कहते हैं। पंच महाव्रत पालते हों और नग्न है, इसलिए साधु—ऐसा नहीं है। आहाहा! वीतराग निर्विकल्प अभेद समाधि को आचरते हैं। आहाहा! जिनस्वरूपी भगवान आत्मा वीतरागस्वरूप को वीतरागी धारा से आराधते हैं। आहाहा!

सम्यक् शुद्ध निश्चयमोक्षमार्ग से उस तत्त्व को आराधते हैं। समझ में आया? निर्विकल्प समाधि को आचरते हैं, लो न! आहा! वीतरागी निर्मल पर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान को आचरते हैं, उसे कहते हैं और साधते हैं, वे साधु। अट्ठाईस मूलगुण पालन करे, वह साधु, ऐसा यहाँ नहीं कहा।

मुमुक्षु : दूसरी जगह कहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दूसरी जगह कहा हो तो विकल्प का ज्ञान कराया है। आहाहा! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू! और वह भी दिगम्बर मार्ग। समझ में आया? यह वीतरागमार्ग है। अन्यत्र कहीं मार्ग है नहीं। आहाहा! देखो न शास्त्र! अकेले न्याय भरे हैं। साध्यते इति साधु। क्या साधे? कि निर्विकल्प समाधि को साधे। वीतरागीदशा को

साधे। उपादेय तो त्रिकाल है परन्तु साधे यह। वह भी उपादेय कहा जाता है। आहाहा! समझ में आया?

जो निश्चयमोक्षमार्ग है, उसे यहाँ वीतरागी निर्विकल्प समाधि कहा गया है। तो वह वीतरागी निर्विकल्प समाधि का ध्येय तो पूर्ण शुद्ध है। उसमें ग्रहण करनेयोग्य तो त्रिकाली चीज़ है। परन्तु वर्तमान वीतरागी पर्याय भी साधनेयोग्य है। राग नहीं, विकल्प नहीं, व्यवहार नहीं। आहाहा! समझ में आया? अभी तो समझना कठिन पड़े। लोगों ने मार्ग ही कहीं का कहीं कर दिया। आहाहा! मार्ग तो ऐसा है। वीतरागमार्ग सर्वज्ञ परमेश्वर जिनेन्द्रदेव... आहाहा! कुन्दकुन्दाचार्य तो संवत् ४९ में भगवान के पास गये थे। भगवान महाविदेह में विराजते हैं। सीमन्धर भगवान (आदि) बीस तीर्थंकर महाविदेह में विराजते हैं। कुन्दकुन्दाचार्य संवत् ४९ में वहाँ गये थे। दो हजार वर्ष हुए। आठ दिन वहाँ भगवान के समवसरण में रहे थे और वहाँ से आकर समयसार शास्त्र बनाया। उस सबकी झलक इस शास्त्र में है। आहाहा! समझ में आया? इस प्रकार पाँचों का वर्णन आ गया। अरिहन्त, सिद्ध, आचार्य, उपाध्या, साधु।

अर्हंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधु, ये ही पंच परमेष्ठी वन्दने योग्य हैं,... इस प्रकार जो स्वरूप है, वह वन्दनयोग्य है। आहाहा! **ऐसा भावार्थ है।** लो!

गाथा - ८

अथ प्रभाकरभट्टः पूर्वोक्तप्रकारेण पञ्चपरमेष्ठिनो नत्वा पुनरिदानीं श्रीयोगीन्द्रदेवान् विज्ञापयति –

८) भाविं पणविवि पंच-गुरु सिरि-जोइंदु-जिणाउ।
भट्टपहायरि विण्णविउ विमलु करेविणु भाउ।।८।।

भावेन प्रणम्य पञ्चगुरुन् श्रीयोगीन्दुजिनः।
भट्टप्रभाकरेण विज्ञापितः विमलं कृत्वा भावम्।।८।।

भाविं पणविवि पंचगुरु भावेन भावशुद्धया प्रणम्य। कान्। पञ्चगुरुन्। पश्चात्किं कृतम्। सिरिजोइंदुजिणाउ भट्टपहायरि विण्णविउ विमलु करेविणु भाउ श्रीयोगीन्द्रदेवनामा भगवान् प्रभाकरभट्टेन कर्तृभूतेन विज्ञापितः विमलं कृत्वा भावं परिणाममिति। अत्र प्रभाकरभट्टः शुद्धात्मतत्त्वपरिज्ञानार्थं श्रीयोगीन्द्रदेवं भक्तिप्रकर्षेण विज्ञापितवानित्यर्थः।।८।।

ऐसे परमेष्ठी को नमस्कार करने की मुख्यता से श्रीयोगीन्द्राचार्य ने परमात्मप्रकाश के प्रथम महाधिकार में प्रथमस्थल में सात दोहों से प्रभाकरभट्ट नामक अपने शिष्य को पंचपरमेष्ठी की भक्ति का उपदेश दिया।

इति पीठिका

अब प्रभाकरभट्ट पूर्वरीति से पंचपरमेष्ठी को नमस्कार कर और श्रीयोगीन्द्रदेव गुरु को नमस्कार कर श्रीगुरु से विनती करता है –

अब पंच गुरु को भावपूर्वक नमन कर योगीन्दु से।
कहते प्रभाकरभट्ट निर्मल भाव वर्णन के लिये।।८।।

अन्वयार्थ :– [भावेन] भावों की शुद्धताकर [पञ्चगुरुन्] पंचपरमेष्ठियों को [प्रणम्य] नमस्कार कर [भट्टप्रभाकरेण] प्रभाकरभट्ट [भावं विमलं कृत्वा] अपने परिणामों को निर्मल करके [श्रीयोगीन्द्रजिनः] श्रीयोगीन्द्रदेव से [विज्ञापितः] शुद्धात्मतत्त्व के जानने के लिये महाभक्तिकर विनती करते हैं।।८।।

गाथा - ८ पर प्रवचन

ऐसे परमेष्ठी को नमस्कार करने की मुख्यता से श्री योगीन्द्राचार्य... दिगम्बर

योगीन्द्राचार्य हुए हैं। उन्होंने यह परमात्मप्रकाश बनाया है। **श्री योगीन्द्राचार्य ने परमात्मप्रकाश के प्रथम महाधिकार में...** सात गाथा द्वारा पंच परमेष्ठी को नमस्कार किया। सात गाथा द्वारा। आहाहा! **सात दोहों से प्रभाकर भट्ट नामक अपने शिष्य को पंच परमेष्ठी की भक्ति का उपदेश दिया।** अपने शिष्य को कहते हैं, इस प्रकार पंच परमेष्ठी को वन्दन करना। ऐसे पंच परमेष्ठी हैं, उन्हें वन्दन करना। आहाहा! लो, यह सात गाथा में तो अभी इति पीठिका हुई। आहाहा!

पहली गाथा में अनन्त सिद्ध हुए, उन्हें नमस्कार किया। दूसरी गाथा में भविष्य में अनन्त सिद्ध होंगे, उन्हें नमस्कार किया। तीसरी गाथा में वर्तमान भगवान विराजते हैं। सीमन्धर भगवान महाविदेह में तीर्थंकर (विराजते हैं), उन्हें नमस्कार किया। चौथी गाथा में महामुनि को नमस्कार किया। महामुनि होकर सिद्ध होंगे। पाँचवीं गाथा में उनके निवासस्थान को। आत्मा अपने स्वरूप में निवास करता है, ऐसा जानकर नमस्कार किया। छठवें में उसका ज्ञान अरिहन्त, अरिहन्त को नमस्कार किया छठवीं गाथा में। सातवीं गाथा में आचार्य, उपाध्याय और साधु को (नमस्कार किया)। आहाहा!

यह योगीन्द्रदेव दिगम्बर आचार्य थे। वनवास में रहते थे। लगभग ई.स. छठवीं शताब्दी कहते हैं। **अब प्रभाकर भट्ट पूर्व रीति से पंच परमेष्ठी को नमस्कार कर...** यह नमस्कार प्रभाकर भट्ट ने किया, ऐसा कहा। उन्होंने कहा न, यह पंच परमेष्ठी को तू इस प्रकार नमस्कार कर। आहाहा!

मुमुक्षु : छठवीं शताब्दी अर्थात् कितने वर्ष हुए?

पूज्य गुरुदेवश्री : १४०० वर्ष लगभग।

श्री योगीन्द्रदेव गुरु को नमस्कार कर श्रीगुरु से विनती करता है—अब प्रभाकर भट्ट शिष्य है। वह योगीन्द्रदेव गुरु को विनती करता है। प्रभु! हम अनन्त काल से चार गति में भटकते हैं। हमको ऐसा उपदेश दो कि हमारे संसार का अन्त आ जाये और हमको मोक्ष मिले। ऐसा हमको उपदेश दो। आठवीं गाथा है न?

८) भाविं पणविवि पंच-गुरु सिरि-जोइंदु-जिणाउ।
भट्टपहायरि विण्णविउ विमलु करेविणु भाउ।।८।।

गाथा - ९

तद्यथा –

९) गउ संसारि वसंताहँ सामिय कालु अणंतु।
पर मइँ किं पि ण पत्तु सुहु दुक्खु जि पत्तु महंतु।।९।।

गतः संसारे वसतां स्वामिन् कालः अनन्तः।
परं मया किमपि न प्राप्तं सुखं दुःखमेव प्राप्तं महत्।।९।।

गउ संसारि वसंताहं सामिय कालु अणंतु गतः संसारे वसतां तिष्ठतां हे स्वामिन्। कोऽसौ। कालः। कियान्। अनन्तः। पर मइं किं पि ण पत्तु सुहु दुक्खु जि पत्तु महंतु परं किंतु मया किमपि न प्राप्तं सुखं दुःखमेव प्राप्तं महदिति। इतो विस्तरः। तथाहि–स्वशुद्धात्मभावना–समुत्पन्नवीतरागपरमानन्दसमरसीभावरूपसुखामृतविपरीतनारकादिदुःखरूपेण क्षारनीरेण पूर्णे अजरामरपदविपरीतजातिजरामरणरूपेण मकरादिजलचरसमूहेन संकीर्णे अनाकुलत्वलक्षण–पारमार्थिकसुखविपरीतनानामानसादिदुःखरूपवडवानलशिखासंदीपिताभ्यन्तरे वीतराग–निर्विकल्पसमाधिविपरीतसंकल्पविकल्पजालरूपेण कल्लोलमालासमूहेन विराजिते संसारसागरे वसतां तिष्ठतां हे स्वामिन्ननन्तकालो गतः। कस्मात्। एकेन्द्रियविकलेन्द्रियपञ्चेन्दियसंज्ञिपर्याप्त–मनुष्यत्वदेशकुलरूपेन्द्रियपटुत्वनिर्व्याध्यायुष्कवरबुद्धिसद्धर्मश्रवणग्रहणधारणश्रद्धान संयमविषय–सुखव्यावर्तनक्रोधादिकषायनिवर्तनेषु परंपरया दुर्लभेषु। कथंभूतेषु। लब्धेष्वपि तपोभावनाधर्मेषु १शुद्धात्मभावनाधर्मेषु शुद्धात्मभावनालक्षणस्य वीतरागनिर्विकल्पसमाधिदुर्लभत्वात्। तदपि कथम्। वीतरागनिर्विकल्पसमाधिबोधिप्रतिपक्षभूतानां मिथ्यात्वविषयकषायादिविभावपरिणामानां प्रबलत्वादिति। सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्राणामप्राप्तप्रापणं बोधिस्तेषामेव निर्विघ्नेन भवान्तरप्रापणं समाधिरिति बोधिसमाधिलक्षणं यथासंभवं सर्वत्र ज्ञातव्यम्। तथा चोक्तम् – 'इत्यतिदुर्लभरूपां बोधिं लब्ध्वा यदि प्रमादी स्यात्। संसृतिभीमारण्ये भ्रमति वराको नरः सुचिरम्।।' परं किंतु बोधिसमाध्यभावे पूर्वोक्तसंसारे भ्रमतापि मया शुद्धात्मसमाधिसमुत्पन्नवीतरागपरमानन्दसुखामृतं किमपि न प्राप्तं किंतु तद्विपरीतमाकु–लत्वोत्पादकं विविधशारीरमानसरूपं चतुर्गतिभ्रमणसंभवं दुःखमेव प्राप्तमिति। अत्र यस्य वीतरागपरमानन्दसुखस्यालाभे भ्रमितो जीवस्तदेवोपादेयमिति भावार्थ :।।९।।

वह विनती इस तरह है –

चिरकाल से रहते हुए संसार में मैंने कभी।
स्वामी न पाया सुक्ख केवल महा दुख पाए सभी।।९।।

अन्वयार्थ :– [हे स्वामिन्] हे स्वामी, [संसारे वसतां] इस संसार में रहते हुए हमारा [अनंतः कालः गतः] अनन्त काल बीत गया, [परं] लेकिन [मया] मैने [किमपि सुखं] कुछ भी सुख [न प्राप्तं] नहीं पाया, उल्टा [महत् दुखं एव प्राप्तं] महान् दुःख ही पाया है।

भावार्थ :– निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है, उसरूप जो आनन्दामृत उससे विपरीत नरकादिदुःखरूप क्षार (खारो) जलसे पूर्ण (भरा हुआ), अजर अमर पद से उलटा जन्म जरा (बुढ़ापा) मरणरूपी जलचरों के समूह से भरा हुआ, अनाकुलता स्वरूप निश्चय सुख से विपरीत, अनेक प्रकार आधि व्याधि दुःखरूपी बड़वानलकी शिखाकर प्रज्वलित, वीतराग निर्विकल्प–समाधिकर रहित, महान संकल्प विकल्पों के जालरूपी कल्लोलों की मालाओंकर विराजमान, ऐसे संसाररूपी समुद्र में रहते हुए मुझे हे स्वामी, अनन्त काल बीत गया। इस संसार में एकेन्द्री से दोइन्द्री, तेइन्द्री, चौइन्द्री स्वरूप विकलत्रय पर्याय पाना दुर्लभ (कठिन) है, विकलत्रय से पंचेन्द्री, सैनी, छह पर्याप्तियों की संपूर्णता होना दुर्लभ है, उसमें भी मनुष्य होना अत्यन्त दुर्लभ, उसमें आर्यक्षेत्र दुर्लभ, उसमें से उत्तम कुल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण पाना कठिन है, उसमें भी सुन्दररूप, समस्त पाँचों इन्द्रियों की प्रवीणता, दीर्घ आयु, बल, शरीर नीरोग, जैनधर्म इनका उत्तरोत्तर मिलना कठिन है। कभी इतनी वस्तुओं की भी प्राप्ति हो जावे, तो श्रेष्ठ बुद्धि श्रेष्ठ धर्म–श्रवण, धर्म का ग्रहण, धारण, श्रद्धान, संयम, विषय–सुखों से निवृत्ति, क्रोधादि कषायों का अभाव होना अत्यन्त दुर्लभ है और इन सबों से उत्कृष्ट शुद्धात्मभावनारूप वीतरागनिर्विकल्प समाधि का होना बहुत मुश्किल है, क्योंकि उस समाधि के शत्रु जो मिथ्यात्व, विषय, कषाय, आदि का विभाव परिणाम हैं, उनकी प्रबलता है। इसीलिये सम्यग्दर्शन–ज्ञान–चारित्र की प्राप्ति नहीं होती और इनका पाना ही बोधी है, उस बोधि का जो निर्विषयपने से धारण वही समाधि है। इस तरह बोधि समाधि का लक्षण सब जगह जानना चाहिये। इस बोधि

समाधि का मुझमें अभाव है, इसीलिये संसार-समुद्र में भटकते हुए मैंने वीतराग परमानन्द सुख नहीं पाया, किन्तु उस सुख से विपरीत (उल्टा) आकुलता के उत्पन्न करनेवाला नाना प्रकार का शरीर का तथा मन का दुःख ही चारों गतियों में भ्रमण करते हुए पाया। इस संसारसागर में भ्रमण करते मनुष्य-देह आदि का पाना बहुत दुर्लभ है, परन्तु उसको पाकर कभी (आलसी) नहीं होना चाहिये। जो प्रमादी हो जाते हैं, वे संसाररूपी वन में अनन्त काल भटकते हैं। ऐसा ही दूसरे ग्रन्थों में भी कहा है - 'इत्यतिदुर्लभरूपां' इत्यादि। इसका अभिप्राय ऐसा है, कि यह महान दुर्लभ जो जैनशास्त्र का ज्ञान है, उसको पाके जो जीव प्रमादी हो जाता है, वह रंक पुरुष बहुत काल तक संसाररूपी भयानक वन में भटकता है। सारांश यह हुआ, कि वीतराग परमानन्द सुख के न मिलने से यह जीव संसाररूपी वन में भटक रहा है, इसलिए वीतराग परमानन्द सुख ही आदर करने योग्य है।।९।।

गाथा - ९ पर प्रवचन

आहाहा! टीका लो न सीधी। पृष्ठ फट गया है थोड़ा इसमें से। **हे स्वामी...** योगीन्द्रदेव आचार्य दिगम्बर सन्त। प्रभाकर भट्ट दिगम्बर मुनि हैं, वह वस्तु समझने के लिये प्रार्थना करता है। **हे स्वामी, इस संसार में रहते हुए हमारा अनन्त काल बीत गया,...** ओहोहो! चौरासी के अवतार करते-करते प्रभु अनन्त काल गया। चौरासी लाख योनि में, भवसिन्धु में एक-एक योनि में अनन्त अवतार किये। आहाहा! **हमारा अनन्त काल बीत गया, लेकिन मैंने कुछ भी सुख नहीं पाया,...** आहाहा! देखो! स्वर्ग में भी मैं अनन्त बार गया, परन्तु वहाँ सुख नहीं मिला। आत्मा का सुख कहीं नहीं मिला। आहाहा! समझ में आया?

छहढाला में कहा है न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो, पै (निज) आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' मुनिव्रत धारण किये, अट्ठाईस मूलगुण, पंच महाव्रत, समिति, गुप्ति (पालन किये) परन्तु वह कहीं आत्मा का ज्ञान नहीं, सुख नहीं। वह तो विकल्प में है, दुःख है। आहाहा! उसमें दुःख है न? 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो'। नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, परन्तु 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न

पायो।' तो पंच महाव्रत के परिणाम में दुःख है, वह तो आस्रव है। आहाहा! समझ में आया? 'आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।' तो शिष्य का यह प्रश्न है कि प्रभु! मैं नौवें ग्रैवेयक अनन्त बार गया, परन्तु कहीं आत्मा का सुख नहीं मिला। आत्मा के आनन्द का स्वाद कहीं नहीं आया।

मुमुक्षु : सब भवों को याद करे तो सब भवों का याद होगा?

पूज्य गुरुदेवश्री : याद है नहीं यह? अनन्त काल भटका है, यह खबर नहीं? अनन्त काल भटका है। खबर नहीं, इसलिए नहीं था, ऐसा है? खबर है। आहाहा! मैं आत्मा अनादि काल से संसार में भटकता हूँ। यदि मेरी मुक्ति हुई हो तो संसार आया कहाँ से? अनादि काल में नरक के, निगोद के, चींटी, कौआ, कंथवा आवदि के अनन्त भव किये, प्रभु! ऐसे भव करते-करते अनन्त काल व्यतीत हो गया। अब भव का भय लगता है। अब भव न हो। तो प्रभु! ऐसा उपदेश दो कि हमको मोक्ष मिले। आत्मा का सुख मिले, ऐसा उपदेश दो, ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

स्वर्ग में नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। स्वर्ग के ऊपर ग्रैवेयक है न? इकतीस सागर की स्थिति। वहाँ अनन्त बार जीव गया, दिगम्बर साधु होकर। परन्तु मिथ्यादृष्टि। आत्मज्ञान नहीं, मात्र महाव्रत की क्रिया करके शुभ परिणाम से वहाँ गया। परन्तु वहाँ आत्मा का सुख मिला नहीं। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, प्रभु! यह बात जगत को सुनने को मिलती नहीं, इसलिए बेचारे ऐसे के ऐसे भटकते हैं। आहाहा!

कुछ भी सुख नहीं पाया, उल्टा महान दुःख ही पाया है। आहाहा! नौवें ग्रैवेयक गया तो दुःख मिला। नौवें ग्रैवेयक का साधन किया, वह दुःख था। आहाहा! पंच महाव्रत, पाँच समिति, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये, वह राग था, दुःख था। उसे पालने कर नौवें ग्रैवेयक में अनन्त बार गया। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।' यह छहढाला में आता है। परन्तु इसे कहाँ खबर है? क्या है? परन्तु 'आतमज्ञान बिन सुख लेश न पायो।' प्रभु! मुझे कहीं सुख नहीं मिला। मैंने मुनिव्रत लिया और उसके फल रूप से स्वर्ग में गया, परन्तु कहीं मुझे आत्मा का सुख नहीं मिला। आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मध्यान बहुत कठिन वस्तु है?

पूज्य गुरुदेवश्री : है तो इसके नजदीक, परन्तु अभ्यास नहीं, इसलिए कठिन लगता है। आहाहा! सहजानन्द प्रभु, निज आनन्द का नाथ प्रभु आनन्दस्वरूप ही है। आहाहा! उस आनन्द का स्वाद नहीं लिया, इसका नाम सम्यग्दर्शन नहीं हुआ। सम्यग्दर्शन में आत्मा के आनन्द का स्वाद आता है। यह कहते हैं, प्रभु! मुझे कभी सुख को प्राप्त नहीं हुआ। कभी सम्यग्दर्शन को प्राप्त नहीं हुआ, ऐसा कहते हैं। आहाहा! अनन्त बार मुनि का क्रियाकाण्ड किया, दिगम्बर मुनि होकर। समझ में आया? नौवें ग्रैवेयक जाते हैं न? वह दिगम्बर मुनि ही जा सकते हैं। पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण पालन कर शुक्ललेश्या से, शुक्ललेश्या, हों! शुक्लध्यान नहीं। शुक्लध्यान दूसरी चीज़, शुक्ललेश्या दूसरी चीज़। शुक्ललेश्या तो अभव्य को भी होती है। छह लेश्या है न? कृष्ण, नील, कापोत, पीत, पद्म, शुक्ल। यह शुक्ललेश्या अभव्य को भी होती है। उससे नौवें ग्रैवेयक चला जाये। वह कुछ धर्म नहीं। आहाहा! पंच महाव्रत, पाँच समिति, गुप्ति आदि का भाव, वह शुभभाव है, वह आस्रव है, वह दुःख है और उसके फल में भी दुःख है। आहाहा!

प्रभु! **मैंने कुछ भी सुख नहीं पाया, उल्टा महान दुःख ही पाया है।** आहाहा! प्रभाकर भट्ट, योगीन्द्रदेव नग्न दिगम्बर मुनि से प्रार्थना करता है, प्रभु! हमको ऐसा बताओ कि मुझे आत्मा का सुख मिले। आहाहा! समझ में आया? यह शब्दार्थ किया।

भावार्थ - निज शुद्धात्मा की भावना से उत्पन्न हुआ... देखो! **जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है,...** आहाहा! भगवान आत्मा निज शुद्धात्मा। पर शुद्धात्मा वीतराग भी नहीं। निज शुद्ध पवित्र आत्मा भगवान पूर्ण आनन्द, उसकी भावना से। यह पर्याय है। निज शुद्धात्मा, वह त्रिकाल है। उसकी भावना, यह वर्तमान एकाग्रता है। आहाहा! उससे उत्पन्न हुआ। **जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है,...** आहाहा! क्या कहते हैं? मैंने अनन्त काल जो दुःख पाये, वह क्या है? तो कहते हैं कि अपने निज शुद्धात्मा का जो आनन्द अनुभव **उत्पन्न हुआ जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है, उसरूप जो आनन्दामृत उससे विपरीत...** उस आनन्द के अमृतस्वरूप भगवान आत्मा में। आहाहा! **उससे विपरीत नरकादि दुःखरूप क्षार (खारा) जल से पूर्ण (भरा हुआ),...**

आहाहा! निज शुद्धात्मा से उत्पन्न हुआ परमानन्द अमृत से विपरीत यह चार गति का दुःख है।

अरबोंपति है, यह सेठिया कहलाते हैं, ये भी बेचारे दुःखी हैं। देव भी दुःखी, राजा दुःखी, रंक दुःखी, नारकी दुःखी, स्वर्ग (देव) दुःखी। जिसे अन्तर सम्यग्दर्शन और आत्मा का आनन्द नहीं, वे सब दुःखी हैं। दुनिया मूढ़ उसे कहती है कि यह सुखी है। पाँच-पचास लाख मिले हों और धूल मिली है, वहाँ सुखी (मानता है)। धूल भी सुख नहीं, सुन न! दुनिया तो गहल-पागल है। पैसे में सुख नहीं, स्त्री में सुख नहीं, पुत्र में सुख नहीं, इज्जत में सुख नहीं, मकान में सुख नहीं, अरे! पुण्य और पाप के भाव में भी सुख नहीं। और पुण्य-पाप के फलरूप गति में सुख नहीं। आहाहा! कभी सुनने को मिला नहीं।

शुद्धात्मा, निज शुद्धात्मा की एकाग्रता से **उत्पन्न हुआ जो वीतराग परम आनन्द समरसीभाव है,...** अज्ञानी ने जो सुख माना, वह तो राग में सुख माना है। यह तो वीतरागी परमानन्द समरसी वीतरागी भाव। आहाहा! छहढाला में नहीं आया? 'राग आग दाह दहै सदा ताते समामृत सेईये।' आता है? राग चाहे तो दया, दान, पंच महाव्रत का राग, वह दाह-अग्नि है। आहाहा! वह 'राग आग दाह दहे सदा, ताते समामृत सेईये।' यह कहा वह। समरसीभाव है न, उसमें से आया। वह राग से भिन्न भगवान आत्मा की समता—वीतरागभाव का सेवन कर। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात, बापू! लोगों ने तो बाहर के क्रियाकाण्ड में धर्म मानकर जिन्दगी गँवाते हैं। आहाहा! अन्तर में परम आनन्द का समरसीभाव जो आनन्दामृत—आनन्द अमृत, आनन्द का अमृतस्वरूप अनुभव। उससे उलटा, विपरीत नरकादि। नरकादि में चारों गति आयी। स्वर्ग में भी दुःखी है। है न? नरकादि है न? यह पाठ में है। '**नारकादिदुःखरूपेण क्षारनीरेण पूर्णो**' संस्कृत में है। आहाहा! स्वर्ग में भी दुःख। कैसा?

दुःखरूप क्षार (खारा) जल से पूर्ण (भरा हुआ), अजर अमर पद से उल्टा... आहाहा! अजर-अमर ऐसा जो भगवान आत्मा, उससे उल्टा। **जन्म, जरा (बुढ़ापा) मरणरूपी जलचरों के समूह से भरा हुआ,...** संसारसमुद्र। आहाहा! जनम, जरा-

वृद्धावस्था, मरण ऐसे जलचर समूह से भरा हुआ संसार। आहाहा! **अनाकुलता स्वरूप निश्चय सुख से विपरीत, अनेक प्रकार आधि व्याधि दुःखरूपी वड़वानल की शिखाकर प्रज्वलित,...** आहाहा! भगवान आनन्दस्वरूप से उल्टा। अनेक प्रकार आधि—संकल्प-विकल्प, व्याधि—शरीर की, **दुःखरूपी वड़वानल की...** आहाहा! वडवाग्नि होती है न पानी में? **शिखाकर प्रज्वलित, वीतराग निर्विकल्पसमाधिकर रहित,...** आहाहा! पुण्य का भाव भी वडवाग्नि की शिखाकर अग्नि से जले, ऐसा भाव है, कहते हैं। आहाहा!

वीतराग निर्विकल्पसमाधिकर रहित,... रागरहित भगवान आत्मा निविकल्प अभेद शान्ति से रहित **महान संकल्प विकल्पों के जलरूपी कल्लोलों की...** आहाहा! संकल्प और विकल्प, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध ऐसा संकल्प-विकल्प का जाल, उसरूपी कल्लोंले पानी में जैसे उठें... आहाहा! **कल्लोलों की मालाओं कर...** एक के बाद एक... एक के बाद एक... संकल्प-विकल्प... संकल्प-विकल्प... आहाहा! **ऐसे संसाररूपी समुद्र में रहते हुए...** प्रभाकर भट्ट कहते हैं। ऐसे संसार में रहते हुए **मुझे हे स्वामी, अनन्त काल बीत गया।** आहाहा! संसार से भयभीत। योगीन्द्रदेव में आता है, योगसार में। भव से भयभीत होकर अब मैं डरता हूँ। आहाहा! चार गति के भव में सर्वत्र दुःख है। स्वर्ग में राग का दुःख है। आहाहा! वहाँ से डरकर जिसे आत्मा में आना है, वह प्रभाकर भट्ट पूछते हैं, प्रभु! मेरा तो अनन्त काल ऐसा गया। आहाहा!

इस संसार में **मुझे हे स्वामी, अनन्त काल बीत गया। इस संसार में एकेन्द्रिय...** पहले हुआ पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, एकेन्द्रिय जीव। वहाँ दुःखी होकर रहा। **दो इन्द्रिय,...** ईयल, कीड़ा। **तेइन्द्री, चौइन्द्री स्वरूप विकलत्रय पर्याय पाना दुर्लभ (कठिन) है...** एकेन्द्रिय से दो इन्द्रिय, दो इन्द्रिय से तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय पर्याय प्राप्त होना दुर्लभ है। **विकलत्रय से पंचेन्द्रिय पाना कठिन है।** दो इन्द्रिय से, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय से निकलकर पंचेन्द्रिय प्राप्त होना, उससे भी **सैनी पाना...** प्राप्त होना दुर्लभ है। असंज्ञी पंचेन्द्रिय। **छह पर्याप्तियों की सम्पूर्णता होना दुर्लभ है,...** आहाहा! आहार, शरीर, भाषा पर्याप्ति पूर्ण मिलना दुर्लभ है। विकलेन्द्रिय से पंचेन्द्रिय आदि....

उसमें भी मनुष्य होना अत्यन्त दुर्लभ,... है। आहाहा! मनुष्यपना प्राप्त करना तो

अनन्त काल में दुर्लभ है। आहाहा! **उसमें आर्यक्षेत्र दुर्लभ,...** है। मनुष्य क्षेत्र में भी आर्यक्षेत्र मिलना दुर्लभ है। अनार्य क्षेत्र मिले तो देखो न! आये थे न समाचार? बलुभाई का। बलुभाई डॉक्टर है। वे परदेश में गये थे। अनजाना कुछ नाम है। होटल में एक रात्रि के एक हजार रुपये देने पड़े। अनार्य क्षेत्र है। नाम दिया था, नहीं? क्या कुछ नाम था? अनार्य क्षेत्र में गये थे वे। अपने हैं एक बलुभाई। मुम्बई में बड़ा दवाखाना सत्तर लाख में बेच दिया न? दवा बनाते थे। सत्तर लाख। यहाँ अपने साथ रहते थे।

यहाँ कहते हैं। यह वहाँ से पत्र आया था। ऐसा अनार्य क्षेत्र है महाराज! कि कच्ची बिल्ली खाते हैं। आहाहा! ऐसा अनार्य। और सौ रुपये की कीमत की चीज़ दो सौ। सौ का मुनाफा। इतना वहाँ धन्धा चलता है। परन्तु अनार्य-अनार्य देश। ऐसा अनार्य देश। एक रात रहने में साधारण रीति से होटल में पाँच सौ-सात सौ रुपये तो चाहिए ही। एक हजार देना पड़े, ऐसा लिखा है। एक रात्रि में एक हजार। अनार्य क्षेत्र। एक रोटी... कुछ लिखा था नहीं? एक रोटी बनवाने में कितने रुपये? पच्चीस। गेहूँ की एक रोटी— भाखरी चाहिए न, उसके बनाने के कितने रुपये कहे हैं? ऐसा देश है वह। वहाँ जा चढ़े थे। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि दुर्लभ में-दुर्लभ मनुष्यपना दुर्लभ है, उससे आर्यक्षेत्र दुर्लभ, उसमें भी उत्तम कुल दुर्लभ। आर्यक्षेत्र में भी उत्तम कुल न मिले तो ढेढ़, हरिजन, चण्डाल आदि हो। आहाहा! **उसमें से उत्तम कुल ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य वर्ण पाना कठिन है, उसमें भी सुन्दररूप,...** सुन्दर अर्थात् शरीर की आकृति अनुकूल इतना। **समस्त पाँचों इन्द्रियों की प्रवीणता,...** पाँचों ही इन्द्रियाँ अच्छी हों। **दीर्घ आयु...** वापस। उसमें भी दीर्घायु मिलना दुर्लभ। उसमें शरीर का **बल, शरीर निरोग...** यह एक के बाद एक चीज़ दुर्लभ है, कहते हैं।

जैनधर्म इनका उत्तरोत्तर मिलना कठिन है। जैनधर्म मिलना... आहाहा! **जैनधर्म इनका उत्तरोत्तर मिलना कठिन है। कभी इतनी वस्तुओं की भी प्राप्ति हो जावे, तो (भी) श्रेष्ठ बुद्धि,...** सच्ची बुद्धि **श्रेष्ठ धर्म-श्रवण,...** सच्चे धर्म का श्रवण मिलना महा दुर्लभ। आहाहा! जहाँ-तहाँ इससे धर्म होगा... इससे धर्म होगा... तुम पुण्य की क्रिया

करो, यात्रा करो, भक्ति करो, उससे धर्म होगा। यह सब अधर्म का उपदेश है। आहाहा! यह श्रेष्ठ धर्म का श्रवण मिलना मुश्किल है, कहते हैं। सच्चा धर्म क्या है, उसका सुनना मुश्किल है।

धर्म का ग्रहण... और फिर ग्रहण करना मुश्किल है। आहाहा! शुद्ध चैतन्यवस्तु के श्रद्धा-ज्ञान को धर्म कहते हैं। उसका ग्रहण **धारण,...** वापस धार रखना दुर्लभ है। और उससे **श्रद्धान,...** दुर्लभ है। ओहो! सुना, ग्रहण किया, धारणा में आया। परन्तु वस्तु जो शुद्ध चैतन्यमूर्ति भगवान, उसमें उसका सम्यग्दर्शन, वह महादुर्लभ है। समझ में आया? यह प्रभाकर भट्ट गुरु से प्रार्थना (करता है), प्रभु! ऐसे भव गये। यह धर्म श्रवण दुर्लभ हो गया। और उसमें **श्रद्धान,...** सम्यग्दर्शन। सम्यग्दर्शन क्या चीज़ है, इसकी लोगों को खबर नहीं है। यह लोग देव-गुरु-धर्म को मानना, यह दर्शन, (ऐसा मानते हैं)। अब यह श्रद्धा तो मिथ्यात्व है। समझ में आया? राग है और राग को धर्म मानना, वह तो मिथ्यात्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : सम्यग्दर्शन किसे कहते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा के आनन्द की अनुभूति का भान होना। आत्मा के अनुभव की अनुभूति में श्रद्धा होना, इसका नाम सम्यग्दर्शन है।

मुमुक्षु : .... जैनकुल में पैदा हुआ....

पूज्य गुरुदेवश्री : जैन के कुल में जन्म हुआ तो क्या? जैनकुल का भान नहीं, वह कुल ही नहीं। वे कहते थे। जयपुर में है न इन्द्रलालजी, वे कहते थे। दिगम्बर कुल में जन्मे, वे समकिती तो हैं ही। भेदज्ञान तो है ही। धूल में भी है नहीं। आहाहा! भाई! जैनकुल भी अनन्त बार मिला। लिखा नहीं? उसमें से श्रवण मिलना मुश्किल, अच्छी बुद्धि-क्षयोपशम होना मुश्किल, उसमें धर्म का श्रवण मिलना मुश्किल, ग्रहण करना और धारण करना मुश्किल, उसमें से श्रद्धान महामुश्किल। आहाहा!

पूर्णानन्द प्रभु का ज्ञान करके, जानकर उसमें प्रतीति-निर्विकल्प श्रद्धा (होना), पूर्णानन्द के ध्रुव के नाथ को जानने से जो पर्याय प्रगट हुई, उस ज्ञान में ज्ञेय पूरा ज्ञात हुआ। उसकी प्रतीति (होना) बहुत दुर्लभ। समझ में आया? और फिर संयम दुर्लभ।

ओहोहो! सम्यग्दर्शन होने के बाद स्वरूप में रमणता करना, वह तो महादुर्लभ है। वह संयम है। सम्-यम। सम्यग्दर्शनपूर्वक आत्मा की स्वरूप में रमणता। आहाहा! यह समाधि के हिलोरे जगे अन्दर। जैसे समुद्र में पानी का ज्वार आता है न? समुद्र में ज्वार आता है। वैसे मुनि को संयम में आनन्द का ज्वार आता है। उसे संयम कहते हैं। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का ज्वार पर्याय में आवे, ऐसा संयम यह है। आहाहा!

प्रभाकर भट्ट कहता है, प्रभु! यह वस्तु बहुत दुर्लभ। और **विषय-सुखों से निवृत्ति...** पर में सुखबुद्धि का हट जाना और फिर आसक्ति का टलना। श्रद्धा में तो आया। पर में सुखबुद्धि हट गयी सम्यग्दर्शन में। पर में सुख है नहीं। विषय में नहीं, स्वर्ग में नहीं, स्त्री में नहीं, पैसे में नहीं। पर में सुखबुद्धि का अभाव, वह तो सम्यग्दर्शन में हो गया। फिर आसक्ति का अभाव होना, यह बात करते हैं। आहाहा! **क्रोधादि, कषायों का अभाव होना...** पश्चात् क्रोधादि कषाय का अभाव होना **अत्यन्त दुर्लभ है...** परम्परा शब्द रखा है। है? परम्परा, ऐसा शब्द है। है, है। '**परंपरया दुर्लभेषु**' संस्कृत में है। वह यहाँ मैंने सुधारा है। परम्परा बातें सब दुर्लभ है। एक के बाद एक आदि। आहाहा!

और इन सबों से उत्कृष्ट शुद्धात्मभावनारूप वीतराग निर्विकल्प समाधि का होना (तो) बहुत मुश्किल है,... निर्विल्प वीतरागी समाधि अन्दर प्रगट होना, यह बहुत दुर्लभ है। इसकी विशेष बात करेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)